Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.gisrrj.com
OPEN ACCESS
ISSN : 2582-0095
doi : https://doi.org/10.32628/GISRRJ

धर्मपरक जीवन मूल्य : किरातार्जुनीयम् के परिप्रेक्ष्य में

राम अचल यादव
शोधच्छात्र, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

Article Info
Article History
Accepted : 30 July 2024
Published : 20 Aug 2024
Publication Issue :
Volume 7, Issue 4
July-August-2024
Page Number : 50-57

शोधसारांश- कर्तव्य का निर्धारण साधारणत: सम्भव नहीं है। जीवन सागर के समान विशद एवं गहन है। जीवन स्थितियां अनन्त होती हैं। तत्काल कर्त्तव्य का निश्चय करना विवेकशील व्यक्तियों के लिए भी दुष्कर होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है–**"किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिता:।"** किरातार्जुनीयम् में वार्णित् मूल्य मानव समाज के लिए अनुकूल एवं ग्राह्य है।

मुख्य शब्द- किरातार्जुनीयम्, मूल्य, मानव समाज, कर्तव्य, जीवन ,धर्म।

मानव सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ जीव है– "न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चत''। मानवसृष्टि ब्रह्मा की चरम परिकल्पना है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पन्त के शब्दों में,

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर।

मानव तुम सबसे सुन्दरतम्।[1]

मनुष्य के लिए मनुष्य का अध्ययन ही सर्वोपरि एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। मानवता की विजय यात्रा न जाने कब कहाँ, किन–किन रूपों में प्रारम्भ हुई। मानवता के उद्भवकाल में सबकी रक्षा के लिए सबके कल्याण के लिए "सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय'' कुछ नीति–नियमों का निर्धारण हुआ समस्त दर्शन, समस्त धर्म, समस्त कलाएँ, समस्त साहित्य इन्हीं जीवन–मूल्यों की अभिव्यक्ति करते हैं।

मूल्य का अर्थ मानव–जीवन के सन्दर्भ में ही महत्त्व रखता है। जीवन के अभाव में मूल्य चिन्तन तो दूर की बात है। मूल्य शब्द का अस्तित्त्व भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। "मूल्य'' शब्द का आशय मूलत: जीवन–मूल्य अर्थात् जीवन के मापदण्ड से होता है।

Copyright © 2024 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)**

मूल्य शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ- "मूल्य'' शब्द मूल धातु के साथ "यत्'' प्रत्यय संयुक्त कर देने से बना है- "मूलेन आनाभ्यते अभिभूयते मूलेन समं वा इति मूल्य:'' अर्थात् किसी वस्तु के बदले मिलने वाली कीमत।[2]

मूल्य शब्द अंग्रेजी के Value शब्द का समानार्थी है। Value शब्द लैटिन के Valere से बना है जिसका अर्थ अच्छा, सुन्दर होता है। मूल्य शब्द के अर्थ में शिवं और सुन्दरं का समन्वय होता है।

धर्म- महर्षि व्यास ने "ध्रियतेऽनेन इति धर्म:'' व्युत्पत्ति की तथा "धारको धर्म:'' भी कहा अर्थात् जो प्राणियों का धारण-पोषण करता है, जो सबका आधार है, वह धर्म है।

कायिक, वाचिक, मानसिक शुद्धाचरण साध्य धर्म हैं। धर्म ही विश्व का आधार है-

"धर्मो विश्वस्य जगत: प्रतिष्ठा। धर्मे सर्व प्रतिष्ठितम्।''

धर्म प्रथम पुरुषार्थ है। धर्म से अभ्युदय एवं नि:श्रेयस दोनों की सिद्धि होती है। धर्म ही ऋत-चक्र का अधिष्ठाता है। धर्म से ही लोक की प्रतिष्ठा है, धर्म से ही सब नैतिक मूल्य निस्सृत होते हैं। मनुस्मृति में धर्म के दश लक्षण बताये गये हैं-

"धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।''[3]

अर्थात् धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य अक्रोध धर्म समस्त व्यष्टि एवं समष्टि के मूल में व्याप्त विराट चेतना है। धर्म जीवन के समस्त पक्षों में व्याप्त नैतिक चेतना है। वही जीवन क्रम को धारण करता है, वही समस्त मानवता का निर्देशन करता है, संचालन करता है और अन्तत: मानवता का रक्षण करता है।

किरातार्जुनीयमहाकाव्य में धर्मपरक जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति के लिए सम्पूर्ण सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। इसमें धर्म के विविध पक्षों की कथा प्रसंगानुसार समर्थ अभिव्यक्त हुई है। विवेक, कल्याण-कर्म, राग-द्वेष, मुक्त व्यवहार, नियतिवाद, धैर्य स्थित प्रज्ञता, मन:द्वन्द्व की स्थिति में महाजनानुसरण सत्संगति, दुर्जन-संगति के दोष, क्षमा, परोपकार, तप, नैतिकता, शक्ति के सात्विक प्रयोग, मित्र-धर्म, क्षत्रिय धर्म, अक्रोध, व्रत, संकल्प, दान, विनय, मर्यादा, प्रायश्चित आदि के सम्बन्ध में अनुभूति गर्भ अभिव्यंजनाएँ मिलती है।

1. विवेक-

"मतिभेदतमस्तिरोहिते गहने कृत्यविधे विवेकिनाम्।

सुकृत: परिशुद्ध आगम: कुरुते दीप इवार्थ दर्शनम्।।''[4]

द्वैतवन में चारों भाइयों एवं द्रौपदी के साथ अज्ञातवास करते हुए युधिष्ठिर एक वनेचर को गुप्तवेष में दुर्योधन की राज्य-व्यवस्था को जानने के लिए भेजते हैं। वह वनेचर लौटकर जब युधिष्ठिर से दुर्योधन की व्यवहार-कुशलता एवं राज्य उन्नति का वृतान्त बताता है, तब युधिष्ठिर को तुरन्त प्रतिकार करने के लिए उद्यत न देखकर भीम आवेश एवं उत्तेजना में

उनको अवसर-प्रतीक्षा का त्यागकर तत्काल युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं। युधिष्ठिर भीम से तब धैर्य एवं विवेक का आलम्बन लेने को कहते हैं। किरातार्जुनीयम् के द्वितीय सर्ग का उपर्युक्त श्लोक इसी प्रसंग से सम्बद्ध है, जिसमें कि युधिष्ठिर विवेकशीलता का परिणाम सुखद बतलाते हैं और भीम को विचारपूर्वक कार्य करने के लिए कहते हैं- "अन्धकार के सदृश्य संशय से आच्छादित दुर्जेय कार्यानुष्ठान में विचारशील व्यक्तियों का अभ्यस्त निश्चित शास्त्र-दीप के समान वस्तु का दर्शन करा देता है।''

वस्तुत: प्रस्तुत श्लोक में युधिष्ठिर ने भीम को समझाने के व्याज से और भारवि ने युधिष्ठिर के माध्यम से सम्पूर्ण मानव-जाति को सजगता का सन्देश दिया है। संसार में कर्तव्य अनन्त होते हैं। जब तक विवेक जागृत नहीं होता, संशयाच्छादित कर्म और उनका संचालन दुर्बोध ही रहता है। गीता में कहा गया है-

'संशयात्मा विनश्यति।'[5]

सामान्य मानव संशय अथवा द्विविधा से मुक्त नहीं हो पाता। सुकृत व्यक्ति विचारशील होते हैं, उनमें विवेक उत्पन्न होता है। वे सत्-असत् का ज्ञाता हो जाते हैं। उनका शुद्ध शास्त्र-ज्ञान अन्धकार में दीपक के समान वस्तु सत्ता का ज्ञान करा देता है। विवेक-दीप से ही संसार प्रकाशित होता है। विवेकहीनता तो पतन का द्वार है-

"विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपात: शतमुख:।''[6]

2. सत् असत् का संघर्ष-

"भव्यो भवन्नपि मुनेरिह शासनेन।

क्षात्रे स्थित: पथि तपस्य हतप्रमाद:।।

प्रायेण सत्यपि हितार्थकरे विधौ हि।

श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनान्तरायै:।।''[7]

तप स्थल पर पहुँचकर व्यास द्वारा प्रेषित यक्ष अर्जुन को उपदेश देता है "इस पर्वत पर शान्त होते हुए भी व्यास जी की आज्ञा से क्षात्र-धर्म में स्थित होकर अर्थात् शस्त्र धारण करते हुए प्रमाद रहित होकर तपस्या कीजिए, क्योंकि हितकर कार्य होने पर भी ऐसा देखा गया है कि बिना विघ्न के कल्याण को प्राप्त होना कठिन होता है।'' संसार यात्रा में सत् पक्ष और असत् पक्ष का संघर्ष और द्वन्द्व सतत् होता रहता है। विख्यात जीवशास्त्री चार्ल्स डार्विन ने भौतिक रूप से जीव-जगत् में संघर्ष को नैसर्गिक एवं अनिवार्य माना है। कार्ल मार्क्स मानवसमाज में इसी द्वन्द्व को स्वीकार करता है। भारत में धर्म और अधर्म, ब्रह्म और माया का द्वन्द्व स्वीकार किया गया है।

3. धैर्य एवं स्थितप्रज्ञता- धैर्यवान् का कार्य-श्रम कभी निष्फल नहीं जाता। मुनि व्यास के उपदेश अनुसार पार्थ इन्द्रकील पर्वत पर घोर तपस्या करते हैं और तप में लीन उनको कोई विघ्न बाधा विचलित नहीं कर पाती। उनके अटूट धैर्य के परिणामस्वरूप दुस्साध्य तप भी उनके लिए सुकर और खेद रहित हो जाता है-

"प्रणिधाय तत्र विधिनाऽथ धियं दधतः पुरातनमुनेर्मुनिताम्।

श्रममादधावसुकरं न तपः किमिवाऽवसादकरमात्मवताम्।।"[8]

इसी प्रकार अपनी तपस्या के महान फलसूचक लक्षणों को देखकर भी वे स्थिर रहते हैं क्योंकि जितेन्द्रिय पुरुषों का अपने प्रभाव का गुण उन्हें धैर्य से च्युत नहीं करता।

"न जगाम विस्मयवशं वशिना न निहन्ति धैर्यमनुभाव गुणः।"[9]

आत्मवान् व्यक्ति सुख दुःख से मुक्त एवं स्थितधीः होते हैं। स्थितधीः का लक्षण गीता में बताया गया है–

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।" [10]

कुमारसम्भवम् में भी कालिदास ने कहा है कि–

"विकारहेतौ मति विक्रयन्ते येषां न चेतांसि ते एव धीराः।।"[11]

उतावलेपन से कार्य उतने सिद्ध नहीं होते, जितने कि धीरज से–

"न संरम्भेण सिद्धयन्ति सर्वेऽर्था सान्त्वया यथा"12

इसीलिए धीर पुरुष तीनों लोकों को भी जीत सकने में समर्थ होता है–

"लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः।"[13]

विजय चाहने वाले व्यक्ति लक्ष्योन्मुख होते हैं। लक्ष्य पर उनकी अर्जुन–दृष्टि होती हैं इसीलिए मार्ग की बाधाएँ उनका कार्य अवरूद्ध नहीं कर सकतीं–

"न्याय्यात्पथात् प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।"[14]

स्थितप्रज्ञता को भारवि ने अर्जुन की इस दृढ़ता के माध्यम से कहते हैं कि महान लोगों के धैर्य की महिमा अज्ञेय है–

"स्थिरतां महतां हि धैर्यमविभाव्यवैभवम्।"[15]

4. महाजनानुसरण-

"स्पृहणीयगुणैर्महात्मभिश्चरिते वर्त्मनि यच्छतां मनः।

विधिहेतुरहेतुरागसां विनिपातोऽपि समः समुन्नतेः।।[16]

अर्थात् प्रशंसनीय गुण वाले महात्माओं से अनुसृत मार्ग पर मन लगाने वाले पुरुषों के देवहेतुक अपराध से होने वाला अनर्थ भी उन्नति के समान होता है।

युधिष्ठिर के ये वचन पूर्णत: युक्तियुक्त एवं तर्कसम्मत है। मानव जीवन में असंख्य द्वन्द्व होते हैं, संशय होते हैं। मार्ग का निश्चय नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में स्पष्ट शास्त्र कथन है–"महाजनो येन गता: स पन्था:।'' प्रशंसनीय गुणवाले महात्मा जिस मार्ग का अनुसरण करें, उसी मार्ग पर चित्त को लगाना चाहिए, उसी से परम–कल्याण होता हे। ऐसे मार्ग पर चलने से दैवकृत अपराध से अनर्थ भी नहीं होता इसीलिए महाभारत से सन्मार्ग–व्यवहार का उपदेश है–

"सतां वृत्तं चाददीतार्य वृत्त:।''[17]

"सज्जनानुसरण से अनर्थ भी उन्नति तुल्य होता है। इसलिए महान् लोगों का अनुवर्तन ही श्रेयस्कर है। "गीता में कहा गया है–

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन:।

स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।''[18]

5. दुर्जन-संगति, सज्जन-संगति-

"समुन्नयन्भूतिमनार्य सङ्गमाद्वरं विरोधोऽपि समं महात्मभि:।''[19]

अर्थात् ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली सज्जनों के साथ शत्रुता भी असज्जनों की मित्रता से श्रेष्ठ होती है।

दूत का कथन शत–प्रतिशत सत्य है, क्योंकि लोक में दुष्टों की मैत्री से उन्नति कभी नहीं देखी जाती, उनकी मित्रता से दुर्भाव ही उत्पन्न होते हैं। कुछ भी सुकर्म अथवा सुफल अर्जित नहीं होता, इसलिए दुर्जनों का संग सर्वथा त्याज्य हैं। वाल्मीकि ने कहा है–

"यथा पूर्वगज: स्नात्वा गृह्यहस्तेन वै रज:।

दूषयत्यात्मनो देहं तथानार्येषु सौहृदम् ।।"[20]

इस हितोपदेश का भी सन्दर्भ में यही कथन है–

"दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत्।

उष्णो दहति चाङ्गार: शीत: कृष्णायते करम् ।।"[21]

इसके विपरीत सज्जनों की संगति सदैव परिणामसुखदा होती है, भले ही वह संगति वैर के रूप में क्यों न हो। सज्जनों की स्पर्द्धा से, उसकी तुलना से, उनकी प्रतियोगिता से दुष्ट व्यक्ति भी अच्छा बनने का प्रयास करता है। इसलिए सत्संगति ग्रहण करने योग्य है। कबीरदास कहते हैं–

"कबिरा संगति साधु की बेगि करीजै जाय।

दुरमति दूरि गंवाइसी देसी सुमति बताय।।"[22]

नीतिशतक में सत्संगति की महिमा का स्पष्ट निर्देश है–

"सत्सङ्गतिः कथय किन्न करोति पुंसाम् ।।"[23]

6. क्षमा- धैर्यशाली युधिष्ठिर उत्तेजित भीम को विवेकपूर्ण उक्तियों द्वारा सान्त्वना देते हैं, क्रोध को ग्रहणीय और क्षमा को स्पृहणीय बतलाते हैं–

"उपकारकमायतेर्भृशं प्रसवः कर्मफलस्य भूरिणः।

अनपायि निवर्हणं द्विषां न तितिक्षासममस्ति साधनम्।।"[24]

अर्थात् भविष्य का अत्यन्त उपकारक, अधिक कार्य के फल जनक, अमोध शत्रुओं का निवारण–नाश करने वाली क्षमा के समान कोई दूसरा साधन नहीं है। क्षमा मानव का उच्चतम गुण है। यह अतिविशिष्ट मानव–मूल्य है। क्षमा तो अपूर्व साधन है, समस्त तपों का मूल है–

"क्षमा हि मूलं सर्वतपसाम्।"[25]

आदि कवि वाल्मीकि के शब्दों में–

"क्षमा दानं क्षमा सत्यं क्षमा यज्ञश्च पुत्रिकाः।

क्षमा यशः क्षमा धर्मः क्षमया तिष्ठितं जगत् ।।"[26]

7. परोपकार- परोपकार के विषय में महाकवि भारवि कहते हैं–

"तप्तानामुपदधिरे विषाणभिन्नाः प्रह्लादं सुरकरिणां धनाः क्षरन्तः।

युक्तानां खलु महतां परोपकारे कल्याणी भवति रुजत्स्वपि प्रवृत्तिः।।"[27]

अर्थात् हाथियों के दाँतों से भिन्न बूँद टपकाते हुए, मेघों ने धर्मतप्त गजों को आनन्द दिया। परोपकार में लगी हुई सज्जनों की प्रवृत्ति सताने वाले के विषय में भी कल्याणकारिणी होती है।

इसी बात को व्यास जी ने दो बिन्दुओं पर समाहित किया है–

"अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।"

8. कर्त्तव्याकर्त्तव्य- अज्ञातवास में दूत के मुख से शत्रु–उत्कर्ष सुनकर भी युधिष्ठिर को शान्त और धैर्य धारण करते देखकर भीम की प्रतिशोधाग्नि उद्दीप्त हो उठती है, वे युधिष्ठिर से शत्रु पर बल पूर्वक विजय प्राप्ति के लिए कहते हैं। किन्तु धीर युधिष्ठिर भीम को विचारपूर्वक कार्य करने की सान्त्वना देते हैं। इस उपक्रम में वे कहते हैं कि–

"अवसाययितुं क्षमाः सुखं न विधेयेषु विशेषसम्पदः।"[28]

अर्थात् कर्त्तव्य में विशेष वस्तु सूक्ष्म होने के कारण सुखपूर्वक निश्चित नहीं की जा सकती है।

और भी इसी प्रकार–

"सहसा विदधीत न क्रियामविवेक: परमापदां पदम्।"[29]

कर्तव्य का निर्धारण साधारणत: सम्भव नहीं है। जीवन सागर के समान विशद एवं गहन है। जीवन स्थितियां अनन्त होती हैं। तत्काल कर्त्तव्य का निश्चय करना विवेकशील व्यक्तियों के लिए भी दुष्कर होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है–

"किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिता:।"[30]

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि किरातार्जुनीयम् में वार्णित् मूल्य मानव समाज के लिए अनुकूल एवं ग्राह्य है।

सन्दर्भ सूची-

1. युगपथ, पृ. 55.
2. हिन्दी विश्व कोश सं. नगेन्द्र नाथ वसु, पृ. 238–39.
3. मनुस्मृति, 6/92.
4. किरातार्जुनीयम्, 2/33.
5. श्रीमद्भवत्गीता, 4/40.
6. नीतिशतक, 10.
7. किरातार्जुनीयम्, 5/49.
8. किरातार्जुनीयम्, 6/19
9. किरातार्जुनीयम्, 6/28.
10. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/56.
11. कुमारसंभवम्, 1/59.
12. श्रीमद्भागवत्, 8/6/24
13. नीतिशतक, 98.
14. नीतिशतक, 79.
15. किरातार्जुनीयम्, 12/3.
16. किरातार्जुनीयम्, 2/34.
17. महा. आदिपर्व, 87/10.
18. श्रीमद्भगवद्गीता, 3/21
19. किरातार्जुनीयम्, 1/8
20. रामायण, 6/16/15.
21. हितोपदेश, 32.
22. कबीरग्रन्थावली, साधको संग (26)
23. नीतिशतक, 22.
24. किरातार्जुनीयम्, 2/43.
25. हर्षचरितम्, पृ. 13.
26. वाल्मीकि रामायण, 1/33/89.

27. किरातार्जुनीयम्, 7/13.
28. किरातार्जुनीयम्, 2/29.
29. किरातार्जुनीयम्, 2/30
30. श्रीमद्भगवत्गीता, 4/16